ISSN - 2231-1130
वर्ष–सप्तम् ; सितम्बर–2016

समकालीन हिन्दी कविता का स्वरूप और दिशा

विकास चौरसिया*

समकालीन समय इतिहास के आइने में वह समय है जो आज की प्रासंगिकता को दर्शाता है। समाज का बोध कराने वाली हर कलात्मक अभिव्यक्ति चाहे वह कला हो, साहित्य हो, सिनेमा हो यदि वह आज को प्रभावित करती है तो वह समकालीन है। आधुनिक हिन्दी काव्य के इतिहास में समकालीन हिन्दी कविता का विशेष योगदान रहा है।

समकालीन हिन्दी कविता की शुरूआत कहाँ से मानी जाए? विद्वानों में अलग–अलग मतभेद हैं। कुछ विद्वान समकालीन कविता की जड़ें भारतेन्दु में खोजते हैं जो निराला, नागार्जुन और मुक्तिबोध की परम्परा के रूप में विकसित होकर आज हमें प्राप्त होती है, कुछ विद्वान सन् 1960 के बाद लिखे जाने वाली कविता को, कुछ सन् 1980 के बाद लिखी जाने वाली कविता को समकालीन कविता मानते हैं।

समकालीन कविता नई कविता के विभिन्न आंदोलनों में से एक काव्यांदोलन है। हिन्दी काव्य साहित्य में इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग विशम्भर नाथ उपाध्याय ने किया। इसके स्वरूप और परिभाषा को लेकर मतभेद है। 1970 ई0 के बाद लिखी गयी कविता को मोटे तौर पर यदि समकालीन कविता मान लिया जाये तो सीमांकन की सुविधा हो सकती है। इस समयावधि में विभिन्न विचारधाराओं के कवि सक्रिय दिखाई देते हैं। इन अन्तर्विरोधी विचारधाराओं के कारण समकालीन कविता में जनवादी चेतना को उसका सामान्य तत्व मान लेने में सुविधा हो सकती है। समकालीन कविता का कथ्य जनसामान्य के हितों के अनुकूल उन सभी तथ्यों का चित्रण है, जिससे मानव प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सके। डॉ0 विशम्भर नाथ

* शोधछात्र, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'समकालीन कविता का यथार्थ' में लिखा है कि– "समकालीन कविता अपने समय के मुख्य अंतर्विरोधों और द्वन्द्वों की कविता है। समकालीन कविता में जो हो रहा है, का सीधा खुलासा है। इसको पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता है, क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते, गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है।

सन् 1975 में लगे आपातकाल, 'सम्पूर्ण क्रान्ति' के लिए गूंजते नारे, 1977 के आम चुनाव में कांग्रेस की करारी हार, नवगठित सरकार से जनता की असंतुष्टि, मध्यावधि चुनाव कांग्रेस के पुनरागमन, इन्दिरा गाँधी की हत्या, नागरिक असंतोष के नए–नए कारण समकालीन कविता का विषय बनते हैं। देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक संतुलन की ध्वनि आमजन की समस्याओं के रूप में स्पष्ट दिखाई देती हैं। रघुवीर सहाय 'खोज–खबर' शीर्षक कविता में लिखते हैं–

"यह तुमने क्या लिखा
झुर्रिया, उनके भीतर छिपे
उनके प्रकट होने के आसार
आँखों में उदासी–सी एक चीज़ दिखती है
यह तुमने मरने से पहले का वृत्तान्त क्यों लिखा।"[1]

सन् 1980 ई0 के पहले के समय में लिखी गई समकालीन कविता में जनवादी स्वर मुखर हैं। यद्यपि जनवादी काव्य का तात्पर्य सामंतवाद विरोधी काव्य से है, किन्तु विभिन्न कालों में, अलग–अलग देशों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों एवं चुनौतियों के अनुरूप इसका स्वरूप परिवर्तित होता रहा है। इसलिए कभी यह सामंतवाद विरोधी, कभी सामंतवाद–साम्राज्यवाद विरोधी तो कभी सामंतवाद–साम्राज्यवाद–पूँजीवाद विरोधी दिखाई देता है। 'हथौड़े का गीत' शीर्षक कविता में केदारनाथ अग्रवाल ने इस परम्परावादी सामाजिक ढाँचे को तोड़ने की वकालत की है–

"मार हथौड़ा
कर कर चोट
लाल हुए काले लोहे को
जैसा चाहे वैसा मोड़
मार हथौड़ा
कर कर चोट
थोड़े नहीं अनेको गढ़ ले
फौलादी नरसिंह करोड़।"[2]

समकालीन कविता के सन्दर्भ में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर का नाम पहले आता है। आठवें दशक के बाद काव्य क्षितिज पर अवतरित कवियों ने इनकी परम्परा से अपने को जोड़ते हुए मध्यवर्गीय जीवन के साथ निम्न वर्ग और वंचित–शोषित वर्ग की पीड़ा, संघर्ष, आकांक्षा और जिजीविषा को स्वर दिया है। ऐसे कवियों में रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, वेणु गोपाल, आलोकधन्वा, केदारनाथ सिंह, दुष्यन्त कुमार, अदम गोंडवी, राजेश जोशी, धूमिल, मंगलेश डबराल, लीलाधर जगूड़ी, पंकज सिंह, उदय प्रकाश, ज्ञानेन्द्रपति, गोरख पाण्डेय, अरुण कमल, रंजना जायसवाल, वीरेन डंगवाल, देवेन्द्र आर्य आदि प्रमुख हैं।

"आज चाहे स्त्री विमर्श हो या दलित विमर्श या फिर वर्तमान आर्थिक विषमताओं, वैश्वीकरण, हाशिए पर पड़े गरीबों–आदिवासियों की समस्याएँ, पारिवारिक व सामाजिक मसलों अथवा भ्रष्टाचार व शोषण की बात हो, समकालीन कविता ऐसे तमाम ज्वलन्त सरोकारों का प्रतिनिधित्व कर रही है।"[3] लोकतांत्रिक हुक्मरानों ने अपने लाभ हेतु जनता का हर तरह से शोषण किया है, साथ ही इस व्यवस्था को बनाये रखने के लिए नित नए–नए कानूनों द्वारा जनता के अधिकारों में कटौती, अपने हक के लिए आवाज बुलंद करने वालों का पुलिस बर्बरता से दमन, विरोध प्रदर्शन करने वाले जुलूसों पर

लाठी–चार्ज, जन नेताओं की हत्या, फर्जी मुठभेड़ों के नाम पर निरपराध लोगों की हत्या कर रही है। आजादी के बाद अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही जनता पर स्वदेशी सरकार के जुल्म को उजागर करते हुए केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है–

"जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे नेः
घर का मलवा, टूटी खटिया
कुछ हाथ भूमि वह भी परती।"[4]

समकालीन कवियों ने आजादी, लोकतंत्र, कानून और संविधान के खोखलेपन को उजागर किया है। देश का लोकतंत्र, संविधान और कानून पैसे वालों के हित रक्षा में रत है। साधारण जनता को हर जगह छला जा रहा है। ऐसी स्थिति में जब सरकार के मंत्री, नेता, अधिकारी, स्वतंत्रता, संविधान, न्याय और कानून की बात करते हैं तो उनकी स्थिति हास्यास्पद हो जाती है। देश में सर्वव्यापी भ्रष्टाचार का चित्रण दुष्यन्त कुमार ने इस प्रकार किया है–

"न हो कमीज़ तो पाँवों से पेट ढंक लेंगे
ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफर के लिए"[5]

समकालीन कवि अरुण कमल ने संचार माध्यमों द्वारा जन साधारण के दमन तथा रोजमर्रा की समस्याओं को नजरअंदाज कर चटपटी खबरों को तरजीह देने की विसंगति की ओर लक्ष्य करते हुए लिखा है–

"अखबारों में खबर थी–
कैलिफोर्निया की एक कुतिया ने तेरह बच्चे/एक साथ जने।
अखबारों में खबर थी/युवराज ने कंगालों में कम्बल बाँटे
अखबारों में खबर थी/विश्व सुन्दरी का वजन 39 किलो है।

अखबारों में खबर थी/राजनेता ने दाढ़ी मुड़ाई।
एक खबर जो कहीं नहीं थी,
किश्ता गोड को फाँसी हो गई/भूमैया को फाँसी हो गयी।"

आज की राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण कालाबाजारी, मुनाफाखोरी से जनता की दाल–रोटी उसकी पहुँच से बाहर हो गयी है। इसके विपरीत जमाखोरों के पौ बारह हैं। शासन में बैठे राजनेता पूंजीपतियों के ही हितचिन्तक एवं रक्षक हैं। राजनीतिक जीवन में आयी गिरावट के बारे में नागार्जुन ने अपने क्षोभ को व्यक्त करते हुए लिखा है–

"राजनीति क्या है?बिष्ठा है, मल है
साहित्य क्या है?गंगा का जल है।
दिखाने के दाँत और खाने के और
आप तो अमलेन्द्र जी ठहरे, खैर समाज के सिरमौर
जातिवाद का डंडा है, राजनीति मथनी
करनी अलग है, अलग है कथनी।"

समकालीन कविता अपने समाज और परिवेश से संपृक्त है। जनता की आशा–निराशा, राग–द्वेष, सुख–दुःख उसमें समाये हुए हैं। समकालीन कविता में राजनैतिक भ्रष्टाचार जनता की कठिन होती दैनिक दिनचर्या, सामाजिक विकृतियाँ, सिद्धान्तों का खोखलापन समेटा गया है। पूर्व की कविता की तुलना में समकालीन कविता में सपाट बयानी अधिक है। इस कविता का स्वर आक्रोश से भरा हुआ है। इस काल की कविता में मनुष्य जिन विसंगतियों, तनावों एवं कुंठा को लिए हुए जी रहा है वे सभी वास्तविक हैं। समकालीन कविता में निर्मम वास्तविकताओं का यथार्थ चित्रण है। इसका कवि तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक व्यवस्था और समस्याओं के प्रति पूर्णतया सजग है। इस कविता में कवि की व्यक्तिगत पीड़ा के साथ–साथ व्यवस्था के प्रति मोहभंग तथा आक्रोश का चित्रण किया गया है। समकालीन

कविता केवल व्यवस्था के प्रति मोहभंग, आक्रोश ओर क्षोभ को ही प्रकट नहीं करती बल्कि श्रमशील जनों की आवाज बनती हैं, दुष्यन्त जी लिखते हैं–

"दुकानदार तो मेले में लुट गए यारों!
तमाशबीन दुकानें लगा के बैठ गए।"[6]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि समकालीन कविता व्यक्ति के भीतर विवेक को जगाकर उत्पीड़नकारी शक्तियों का प्रबल प्रतिरोध करने की अपार क्षमता रखती है।

नब्बे के बाद की हिन्दी कविता में प्रतिरोध की आवाज ऊँची व आक्रामक हो जाती है। पूनम तूषामड़ की कविता में मृत 'सफाई कर्मचारी' अपनी मौत पर व्यंग्य करता है कि–

"मेरी मौत से
तुम्हारे राष्ट्र ने
न कुछ अर्जित किया
न कुछ गंवाया है..... ।"

फरीद खाँ की कविता 'भूख' का एक उदाहरण देखिए–

भूख बनाती है मूल्य
इस पार या उस पार होने को उकसाती है
नियति भूख के पीछे चलती है
ढा देती है मीनार
सभी ईश्वर देवी देवता स्तब्ध रह जाते हैं
भूख रचती है इतिहास"

इरोम शर्मिला के अनशन के प्रसंग में लिखी गई मृत्युंजय की कविता 'दस साल' में कुछ ऐसे सवाल भारतीय लोकतंत्र के सामने रखे गए हैं जो सोचने पर विवश कर देते हैं–

"तुम्हारे घर में कौन–कौन है ?
भाई ?बहन ?अम्मी ?अब्बू ?

चाय के झुरमुटों के बीच सीधी रेखाओं में निहों कोरस ?
तुम्हारे पड़ोस में कौन रहता है ?
कितने हत्यारे हैं तुम्हारे मुहल्ले में.....?

अन्त में इन उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि समकालीन कविता का स्वरूप हो, संवेदना हो, शिल्प हो या भाषा। कबीर की भाँति भाषा और शिल्प की चिंता किए बगैर गहन भावों की अभिव्यक्ति को सहज रूप में व्यक्त किया जा रहा है।

संदर्भ –

1. सृजन, समाज और संस्कृति, उमेश चौहान साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, संस्करण–2014, पृ0 58
2. कविता की संस्कृति, ए0 अरविंदाक्षन, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, संस्करण–2016, पृ0 47
3. सृजन, समाज और संस्कृति, उमेश चौहान साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, संस्करण–2014, पृ0 55
4. कविता की संस्कृति, ए0 अरविंदाक्षन, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, संस्करण–2016, पृ0 48
5. सृजन, समाज और संस्कृति, उमेश चौहान साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, संस्करण–2014, पृ0 85
6. वही, पृ0 88